International Journal of Applied Research 2024; 10(1): 51-53

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor (RJIF): 8.4
IJAR 2024; 10(1): 51-53
www.allresearchjournal.com
Received: 02-11-2023
Accepted: 01-12-2023

सौरभ कुमार
शोधार्थी, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

डॉ. कुमार वीरेन्द्र सिंह
शोध निर्देषक, सिंह (एसोसिएट प्रोफेसर), हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
सौरभ कुमार
शोधार्थी, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

बदलते मानवीय मूल्यों के संदर्भ में 'रेहन पर रग्घू' का अध्ययन'

सौरभ कुमार, डॉ. कुमार वीरेन्द्र सिंह

सारांश
भूमण्डलीकरण के परिणामस्वरूप हमारे जीवन मूल्यों, मानवीय सम्बंधों, सामूहिकता आदि में बड़ा बदलाव देखने को मिलता है। दूसरे शब्दों में कहें तो भूमण्डलीकरण ने हमारे सभी पुराने मूल्यों को उखाड़कर हाशिए पर दकेल दिया है और उनके स्थान पर नये आधुनिक मूल्य–जोकि बाजारवादी व्यवस्था के मानकों के अनुरूप होते हैं– को स्थापित किया है। इन नये मूल्यों एवं नई व्यवस्था में व्यक्ति स्वयं को ठगा महसूस करता है और भीड़ में अकेलेपन का शिकार होता है। भूमण्डलीकरण की आँधी में व्यक्ति के अकेले होने की त्रासद कथा को कथाकार काशीनाथ सिंह ने अपने उपन्यास 'रेहन पर रग्घू' के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। अकेले पड़ते जा रहे मनुष्य की इस त्रासद कथा में उपन्यासकार ने बदलते मानवीय सम्बंधों एवं जीवन मूल्यों को भी रेखांकित किया है। प्रस्तुत शोध आलेख में इन्हीं बदलते जीवन मूल्यों के आलोक में काशीनाथ सिंह द्वारा रचित उपन्यास 'रेहन पर रग्घू' का अध्ययन किया गया है।

कूटशब्दः भूमण्डलीकरण, गाँव, जीवन मूल्य, मानवीय सम्बंध, अकेलापन, बाजारवाद, रेहन पर रग्घू

प्रस्तावना
भूमण्डलीकरण एक ऐसी प्रक्रिया रही है जिसने हमारे समय के समाज को, सामाजिक मान्यताओं को, मानवीय मूल्यों को, हमारे जीवन संदर्भों को बदलकर रख दिया है। आज मानवीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा पक्ष हो जो इससे प्रभावित हुए बिना रह सका हो। भूमण्डलीकरण की आँधी में हमारी सारी मान्यताएँ, सारी परम्पराएँ, कहीं गुम हुई सी मालूम होती हैं। संक्षेप में कहें तो भूमण्डलीकरण ने हमारे सामाजिक – सांस्कृतिक जीवन में बदलाव की वह लहर पैदा कर दी है जिसको न चाहते हुए भी हमें स्वीकार करना पड़ रहा है।

कथाकार काशीनाथ सिंह ने अपने लेखन के द्वारा बदलते समय के यथार्थ को पकड़ने की कोशिश की है। उनके द्वारा रचित उपन्यास 'काशी का अस्सी' जहाँ भूमण्डलीकरण का शहरों पर क्या प्रभाव पड़ा है, इस बात को दिखाता है वहीं 'रेहन पर रग्घू' गाँव पर भूमण्डलीकरण के असर को बयां करता है। स्वयं काशीनाथ सिंह के शब्दों में– ''जब मैं 'काशी का अस्सी' लिख रहा था, उसी वक्त मेरे जेहन में यह प्रश्न उठा था कि बाजारीकरण के ग्रामीण दुष्प्रभावों को मैं कैसे लिख सकता हूँ। उसके अगले चरण के रूप में मैंने गाँव का चुनाव किया।''[1]

ध्यातव्य है कि 'काशी का अस्सी' का रचनाकाल 2002 है तथा 'रेहन पर रग्घू' का 2008। यानि लगभग 4–5 वर्षों का अन्तराल। इन वर्षों में भूमण्डलीकरण की बयार नगर से गाँव तक पहुँच चुकी थी साथ ही व्यक्ति के घर में भी। जहाँ एक तरफ भूमण्डलीकरण के चलते सामाजिक मान्यताओं में बदलाव आया वहीं साथ ही साथ पारिवारिक रिश्ते–नातों में भी। 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास वस्तुतः इन्हीं बदलावों को केन्द्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है जो वर्तमान समय में टूटते मानवीय–सम्बंधों एवं बदलते जीवन मूल्यों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है।

उपन्यास की कथा रघुनाथ नामक पात्र के जीवन के इर्द–गिर्द बुनी गयी है। रघुनाथ पेशे से अध्यापक हैं। दो बेटे, एक बेटी और पत्नी–शीला, कुल पाँच व्यक्तियों का परिवार है। परिवार में सबकुछ सही चल रहा होता है। फिर धीरे–धीरे सबकुछ कहीं पीछे छूटता जाता है और अंत में रघुनाथ अपनी वृद्धावस्था के साथ जीवन के मैदान में अकेले खड़े दिखाई देते हैं। व्यक्ति के इस अकेले पड़ते जाने की कथा ही उपन्यास की कहानी है।

उपन्यास की शुरुआत कुछ इस तरह होती है– ''घर के सारे खुले खिड़की दरवाजे भड़–भड़ करते हुए अपने आप बन्द होने लगे खुलने लगे। सिटकनी छिटक कर कहीं गिरी, ब्यौड़े कहीं गिरे जैसे धरती हिल उठी हो, दीवारें काँपने लगी हो। आसमान काला पड़ गया और चारों ओर घुप्प अंधेरा।..... ..... इकहत्तर साल के बूढ़े रघुनाथ भौंचक ! यह अचानक क्या हो गया ? क्या हो रहा है ?''[2]

मौसम का यह घुप्प अँधेरा जहाँ एक तरफ वातावरणीय परिदृश्य को दर्शाता है तो वहीं साथ ही बूढ़े

रघुनाथ के जीवन को भी। रघुनाथ की भौंचकता सिर्फ मौसम को लेकर नहीं है बल्कि अपने जीवन में आए उन बदलावों को लेकर है जो न चाहते हुए भी एक–एक करके उनके सभी मूल्यों को तहस–नहस कर देते हैं। उनका बड़ा बेटा संजय अपनी मर्जी से शादी करता है और अमेरिका में जाकर बस जाता है। छोटा लड़का राजू शार्टकट से जीवन में धनवान बनना चाहता है और अपने से बड़ी एक बच्चे की माँ के साथ 'लिव इन' में रहता है। लड़की सरला भी अपनी जाति से निचली जाति के युवक से शादी करना चाहती है, परन्तु माँ–बाप के इन्कार करने पर अविवाहित रहना पसन्द करती है। इस तरह रघुनाथ का पूरा परिवार टूट जाता है और परिवार का प्रत्येक सदस्य अपना अलग जीवन जीने लगता है। अकेलेपन का शिकार हुए रघुनाथ अपनी पत्नी शीला से कहते हैं– ''शीला, हमारे तीन बच्चे हैं लेकिन पता नहीं क्यों, कभी–कभी मेरे भीतर ऐसी हूक उठती है जैसे लगता है– मेरी औरत बॉझ है और मैं निःसन्तान पिता हूँ। माँ और पिता होने का सुख नहीं जाना हमने। हमने न बेटे की शादी देखी, न बेटी की । न बहू देखी न होने वाला दामाद देखा।''[3]

रघुनाथ एक ऐसे व्यक्ति के प्रतिनिधि पात्र हैं जिसके जेहन में एक तरफ आधुनिक मूल्यों का समर्थन है और दूसरी तरफ सामंती सभ्यता का जकड़न भी। जब मंडल कमीशन लागू हुआ था तो उसका समर्थन करने वाले पूरे गाँव में अकेले रघुनाथ ही थे। गाँव के निचले तबके के लोगों के प्रति उनकी पूरी सहानुभूति भी है। निचली जातियों के बच्चों को पढ़ाने का काम भी करते हैं, गाँव में चमटोल के हलवाहों के द्वारा की जाने वाली हड़ताल का समर्थन भी करते हैं परन्तु यही रघुनाथ जब उनकी बेटी सरला अपने पसंद के लड़के, जोकि एक नीची जाति का है, से शादी करने का प्रस्ताव रखती है तो साफ मना कर देते हैं। ऐसे में उनका सामंती संस्कार जाग उठता है और वे कहते हैं– ''यही न कि न होता आरक्षण तो यही भारती किसी न किसी का हल जोत रहा होता या पढ़ने लिखने के बावजूद नगर में रिक्शा खींच रहा होता। तुम्हीं कहती थीं कि एकदम गधा है, कुछ नहीं समझता। आज पी०सी०एस0 हो गया तो उस जैसा कोई नहीं।''[4]

इसी संदर्भ में हम उपन्यास में व्यक्त पीढ़ीगत संघर्ष को भी देख सकते हैं। रघुनाथ और उनकी बेटी सरला क्रमशः दो ऐसी पीढ़ियों को दर्शाते हैं जो एक तरफ सामंती सभ्यता की प्रतीक है तो दूसरी पूँजीवादी सभ्यता की। रघुनाथ के शादी करने के लिए मना करने पर सरला अपने पक्ष में तर्क देते हुए कहती है– ''आप दूसरों की शर्तों पर शादी कर रहे थे, यहाँ मैं करूँगी लेकिन अपनी शर्तों पर, आप मेरी 'स्वाधीनता' दूसरे के हाथ बेच रहे थे, यहाँ मेरी 'स्वाधीनता' सुरक्षित है, आप 'अतीत' और 'वर्तमान' से आगे नहीं देख रहे थे, हाँ मैं 'भविष्य' देख रही हूँ जहाँ 'स्पेस' ही स्पेस है।''[5]

भूमण्डलीकरण के चलते गाँव में हो रहे परिवर्तनों को भी उपन्यास में देखा जा सकता है। जहाँ पहले के गाँव आपसी लेन–देन, आपसी सौहार्द पर आधारित होते थे, वहीं अब धनलोलुपता के बढ़ने से आपसी भाई बंधुओं में भी मन–मुटाव की स्थिति उत्पन्न हो रही है। रघुनाथ के खेतों को उनके ही परिवार के लोग हथियाना चाहते हैं। इसी के चलते कोर्ट–कचहरी के चक्कर काँटने होते हैं। विडम्बना तो तब होती है जब उनके खुद के बच्चे ही इस बात को गंभीरता से नहीं लेते हैं। वे सब इन बातों को फालतू–बेमतलब का समझते हैं। रघुनाथ अपने ही बच्चों के इस व्यवहार से दुःखित और आश्चर्यचकित होते हैं। उनकी इस पीड़ा को इन पक्तियों में देखा जकता है– ''साले, तुम बड़े हुए हो अपनी माँ का दूध पीकर। और तुम्हारी माँ की महतारी है यह जमीन। चावल, दाल, गेहूँ, तेल, पानी, नमक इसी जमीन के दूध हैं। और बोलते हो कि हटाइए उसे ? छोड़िए उसे ?''[6]

इस तरह हम देखते हैं कि उपन्यास में बदलते गाँव की तस्वीर को व्यक्त किया गया है। पहाड़पुर गाँव सामंती व्यवस्था से पूँजीवादी व्यवस्था के बीच संक्रमणकालीन समय का गाँव है। जहाँ अब उत्पादन का माध्यम बदला है, नये मूल्य उत्पन्न हो रहे हैं, जातियों में अपने अस्तित्व को लेकर जागृति आई है, ऐसे में कृषि व्यवस्था भी बदली है और उसके औजार भी। बैल जोकि कृषि व्यवस्था की रीढ़ होते थे, अब फालतू हो गये हैं। उनके स्थान पर ट्रैक्टर आ गया है। ''उसने सबको अहसास करा दिया कि बैल सिरदर्द और बोझ हैं, फालतू हैं, दुआर गंदा करते हैं, उन्हें हटाओ ! उनके गोबर भी किस काम के ? उनसे उपजाऊ तो यूरिया है।''[7]

भूमण्डलीकरण ने हमारी पूरी ग्रामीण–संस्कृति को तहस नहस कर दिया है। गाँव में जहाँ मानवीय रिश्ते कायम रहते थे, आपसी सौहार्द भाव विद्यमान रहता था, संयुक्त परिवार का चलन था, वहीं वर्तमान भूमंडलीय व्यवस्था के गाँवों में इन सब को हाशिए पर ढकेल दिया गया है। बकौल काशीनाथ सिंह– ''गाँव का रिश्ता मानवीय रिश्ता होता है। सहजता का रिश्ता होता है। परस्पर सह योग का रिश्ता होता है। आत्म निर्भरता गाँव की विरासत है। गाँव एक जैविक समाज होता है। उस गाँव को भूमण्डलीकरण ने देखते–देखते क्षत–विक्षत कर डाला। पूरा ग्राम समाज तहस–नहस हो गया है।''[8]

रघुनाथ के जीवन की त्रासदी यही है कि वे स्वयं को नए बदलाव के साथ ढालने में नाकायाब रहते हैं। उनका भन नए के प्रति लालायित रहता है परन्तु पुराना भी छोड़ने को तैयार नहीं है। वे शहर आकर 'अशोक विहार' नामक कालोनी में रहने के लिए उत्सुक हैं परन्तु गाँव की अपनी जमीन भी नहीं छोड़ी जा रही। इस बदलते परिदृश्य में उन्हें किसी पर विश्वास नहीं रहा है। पता नहीं वे शहर जाएँ और इधर उनके खेत दूसरे कब्जा लें। अर्थ केन्द्रित इस समाज में अब अपनों पर भी भरोसा नहीं किया जा सकता । समाज की इसी कटु सच्चाई को रघुनाथ उपन्यास के पात्र जग्गन से कहते हैं– ''देखो जग्गन, 'परायों' में अपने मिल जाते हैं लेकिन 'अपनों' में अपने नहीं मिलते। ऐसा नहीं कि अपने नहीं थे– थे लेकिन तब जब समाज था, परिवार थे, रिश्ते नाते थे, जब भावना थी।''[9]

रघुनाथ के द्वारा कही गई उपर्युक्त पक्तियां हमारे समय के समाज का जीवन्त दस्तावेज अभिव्यक्त करती हैं। इन पक्तियों में अकेले रघुनाथ की पीड़ा ही व्यक्त नहीं हुई है अपितु पूरे समाज का दर्द बयां होता दिखाई देता है।

भूमण्डलीकरण के चलते एक जो बड़ी समस्या हमारे सामने उत्पन्न हुई है वह है–शहरीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति। आधुनिक पूँजीवादी सभ्यता में गाँव से शहर की ओर पलायन बढ़ा है। नये–नये शहरों का उदय हुआ है, पुराने शहरों के किनारे नई–नई कालोनियों का जन्म हुआ है। ये कालोनियाँ शहर के आस–पास के गावों को उजाड़कर बसायी गयी थीं। उपन्यास में बनारस शहर के पास बनी इन्हीं कालोनियों के बारे में बताया गया है– ''बनारस में मुहल्ले थे। नगर, विहार और कालोनियाँ नहीं। .... देखते देखते पन्द्रह बीस वर्षों के अन्दर गाँव के वजूद खत्म हो गए और उनकी जगह नए नए नामों के साथ नगर, कालोनियाँ और विहार बस गए!''[10]

इसी तरह की एक कालोनी – 'अशोक विहार' है। अशोक विहार उन लोगों की कालोनी थी जो सरकारी नौकरी में थे या हैं और निकट भविष्य में रिटायर होने वाले हैं। यह कालोनी उन सभी बूढ़ें– बूढ़ियों की थी जिनके बेटे–बेटी अपने बीबी–बच्चों के साथ कहीं बाहर नौकरी कर रहे थे। उन बूढ़े–बुढ़ियों की कालोनी थी जो अपना घर, अपनी सारी खुशियाँ अपने बच्चों के लिए कुर्बान करके शहर रहने के लिए आए थे और आज वे ही इन घरों में अकेले पड़े हैं। 'जिनके लिए बेघर हुए उन्हीं के अपने अलग घर।' नई पीढ़ी के लिए जड़ों से चिपके रहना पिछड़ापन लगता है।

वास्तव में यह सत्य भी है कि आज जहाँ बाजारवादी व्यवस्था ने नये–नये विकल्प हमारे सामने लाकर रख दिए हैं तो ऐसे में

केवल खेती–किसानी के सहारे बैठकर तो नहीं रहा जा सकता। बदलते समय की सच्चाई यही है कि हमें नये विकल्प को खोजने का काम करना पड़ेगा। आज के समय में खेती–किसानी करना आम आदमी के बस का नहीं रहा। ऐसे में खेती–किसानी को लेकर पीढ़ीगत संघर्ष देखने को मिलता है– ''क्या कर लिया खेती करके आपने? कौन सा तीर मार लिया?, खाद महँगी, बीज महँगा, नहर में पानी नहीं, मौसम का भरोसा नहीं, बैल रहे नहीं, भाड़े पर ट्रैक्टर समय पर मिले, न मिले, हलवाहे और मजूरे रहे नहीं– किसके भरोसे खेती करो?''[11] कथाकार ने इन पक्तियों के माध्यम से खेती–किसानी के परम्परागत तौर–तरीकों के प्रति प्रश्नचिन्ह खड़ा किया है।

बाजारवाद के इस युग में नैतिकता, कृतज्ञता, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा आदि सामाजिक गुणों को हिकारत भरी नजरों से देखा जाता है। धन के लालचवश ये सभी सामाजिक मान्यताएँ हाशिए पर ढकेल दी जाती हैं। आज मनुष्य– मनुष्य के सम्बंध का आधार कोई मानवीय रिश्ता न होकर केवल पैसा एवं आगे बढ़ने की लालसा रह गई है। केवल धन ही मनुष्य जीवन का एकल ध्येय बनता जा रहा है। सोनल और समीर के रिश्ते में भी समाज की यह कटु सच्चाई ही टूटने का कारण बनती है। वे एक ऐसे समाज में आ गए थे जहाँ 'प्यार' जैसे भाव को पिछड़ापन माना जाता था। ''वह एक ऐसे समाज में आ गई थी जिसमें डालर को छोड़ कर किसी और चीज जैसे प्यार – के लिए ईर्ष्या करना पिछड़ापन और गंवारपन था।''[12]

उपन्यास का अंत कुछ इस तरह दिखाया गया है कि रघुनाथ खुद को अपहरण कराने के लिए कहते हैं। जब गाँव की जमीन के कागजों पर दस्तखत कराने आए लड़के उन्हें मारने की धमकी देते हैं तो ऐसे में रघुनाथ उन्हें खुद को अगवा करने की बात कहते हैं। उपन्यास का अंतिम अंश इस प्रकार है –''रघुनाथ जब छड़ी के सहारे बाहर आए तब उनका चेहरा बन्दरटोपी के अन्दर था और रजाई लड़के के कंधे पर। वे आगे आगे, दोनों अपहर्ता लड़के पीछे पीछे– जैसे वे बेटों के साथ मगन मन तीरथ पर जा रहे हों।''[13]

यहाँ अपहरण केवल रघुनाथ का नहीं है अपितु रघुनाथ के बहाने उन सभी जीवन मूल्यों का है जो हमारे परम्परागत भारतीय समाज की धुरी थे। जिनके सहारे मनुष्य अपने जीवन को सार्थक महसूस करता था। इस तरह से हम देखते हैं कि उपन्यास भूमण्डलीकरण के बाद उपजी बाजारवादी मानसिकता के चलते अकेले पड़ते जा रहे व्यक्ति की कहानी बयां करता है।

उपन्यास के माध्यम से कथाकार काशीनाथ सिंह ने आज की इस बाजारवादी समाज व्यवस्था में हाशिए पर ढकेल दिए व्यक्ति की कहानी को, संवेदनहीन होती जा रही मानवीय सभ्यता को, और इस व्यवस्था में अकेले और निस्सहाय होते जा रहे व्यक्ति के जीवन को पूरी सहानुभूति के साथ व्यक्त किया है। इस तरह हम देखते हैं कि मानवीय सम्बंधों में बदलाव के कारकों को प्रश्नांकित करता यह उपन्यास अपने समय का प्रतिनिधि उपन्यास बन जाता है। ''यह उपन्यास वस्तुतः गाँव, शहर, अमेरिका तक के भूगोल में फैला हुआ अकेले और निहत्थे पड़ते जा रहे समकालीन मनुष्य का बेजाड़े आख्यान है।''[14]

निष्कर्ष

हम यह कह सकते हैं कि 'रेहन पर रग्घू' वर्तमान मानवीय जीवन की महागाथा का उपन्यास है। इसके जरिए कथाकार ने आज की बाजारवादी सभ्यता में अकेले पड़ रहे मनुष्य की जिंदगी को रेखांकित किया है। 'रेहन पर रग्घू' सिर्फ रघुनाथ के जीवन सत्य को उद्घाटित नहीं करता बल्कि मध्यवर्गीय हर उस व्यक्ति के जीवन की कहानी कहता है जो भूमण्डलीकरण के चलते स्वयं को अकेला महसूस करता है। उपन्यास में भूमण्डलीकरण के परिणामस्वरूप टूटते मानवीय सम्बंधों एवं बदलते जीवन मूल्यों को रेखांकित करने के साथ–साथ प्रश्नांकित भी किया गया है।

संदर्भ

1. पल्लव (सं.), बाते हैं बातों का क्या, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2022, पृष्ठ 18
2. काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2010, पृष्ठ 11
3. उपर्युक्त, पृ. 89
4. उपर्युक्त, पृ. 54
5. उपर्युक्त, पृ. 54
6. उपर्युक्त, पृ. 85
7. उपर्युक्त, पृ. 79
8. पल्लव (सं.), गपोड़ी से गपशप, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2013 पृष्ठ 112
9. काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2010, पृ. 98
10. उपर्युक्त, पृ. 103
11. उपर्युक्त, पृ. 105
12. उपर्युक्त, पृ. 110
13. उपर्युक्त, पृ. 164
14. उपर्युक्त, पुस्तक के फ्लैप से।